भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान पत्रिका
वर्ष 15 अंक 1 जून 2007 पृ. 11-17

# कुछ विषमचक्रीय नियामकों द्वारा मृदा में यूरिया नत्रजन के नाइट्रीकरण का नियमन

जे पी शर्मा*, टीकम सिंह*, राजेश कुमार, एच के तनेजा एवं एस एस तोमर
*मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110 012
कृषि रसायन संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110 012

**सारांश :** मृदा में प्रयोग की गई नत्रजन की मात्रा की लगभग 30 से 40% ही नत्रजन-उपयोग क्षमता होती है। इतनी कम आभासी नत्रजन उपलब्धि और उपयोग क्षमता के कारणों में अमोनियाकृत वाष्पीकरण, विनाइट्रीकरण, नाइट्रीकरण और नाइट्रेट का भूमि की निचली सतहों में निक्षालन आदि हैं। उपरोक्त कारणों से ही मृदा-स्वास्थ्य, पोषक तत्वों की उपलब्धता एवं वातावरण पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। नाइट्रीकरण ही इस समस्या का केन्द्र बिन्दु है जो अपर्याप्त नत्रजन उपयोग, विनाइट्रीकरण और निक्षालन का कारक है। इन समस्याओं को सुलझाने के लिये विश्व स्तर पर प्रयास जारी हैं। इसके लिये नत्रजन नियामकों का प्रयोग किया जा सकता है[6]। अधिकांश प्रतिष्ठित क्षमता वाले नत्रजन नियन्त्रक विषमचक्रीय यौगिक ही हैं जैसे कि डीसीडी (एन सर्व या नाइट्रापाइरिन), 2-क्लोरो-6-(ट्राइक्लोरोमिथाइल) पाइरीडीन, 5-इथॉक्सी-3-ट्राइक्लोरोमिथाइल-1,2,4-थायाडायाज़ोल (इटरीडायाज़ोल), 4-अमीनो-1,2,4-ट्रायज़ोल (एटीसी), 3-मिथाइलपाइराज़ोल-1-कार्बोक्सामाइड (एमपीसी), 2,4-डाइअमीनो-5-ट्राइक्लोरोमिथाइलट्रायज़ीन और 2-अमीनो-4-क्लोरो-6-मिथाइलपाइरीडीन इत्यादि। अमोनिया ऑक्सीकरण जिसको, *नाइट्रोसोमोनाज़ इरोपिया* बैक्टीरिया शुरु करता है, दो अवस्थाओं में पूरा होता है। इसकी प्राथमिक अवस्था में अमोनिया का ऑक्सीकरण हाइड्रॉक्सिलअमीन में होता है। यह क्रिया झिल्ली बन्धित एन्ज़ाइम अमोनिया मोनोऑक्सीजिनेज़ (एएमओ) द्वारा होती है। एक नत्रजन नियामक की नत्रजन नियन्त्रण क्षमता उसके एएमओ के साथ बंधन के कारण होती है जो *नाइट्रोसोमोनाज़ इरोपिया* में पाया जाता है। चूंकि एएमओ विषमचक्रीय रसायनों द्वारा प्रभवित होता है इसलिये प्रयोगशाला में कुछ आइसोऑक्साज़ोल श्रेणी के विषमचक्रीय रसायनों का निर्माण किया गया। मृदा के साथ इन्क्यूबेशन अध्ययन में इन रसायनों के प्रभाव को देखने पर पता चला कि एक सप्ताह बाद 5-फिनाइलआइसोऑक्साज़ोल और 3-मिथाइल-5-(4-मिथॉक्सीफिनाइल) आइसोऑक्साज़ोल द्वारा क्रमशः 78.2 और 82.6% नाइट्रीकरण का नियन्त्रण हुआ जोकि संदर्भीय नाइट्रीकरण नियामक डाइसाइनडाइएमाइड (डीसीडी) द्वारा प्रदर्शित 85.1% नियन्त्रण के समकक्ष था।

# Regulation of nitrification of soil-applied urea by some heterocyclics

J P Sharma*, Teekam Singh*, Rajesh Kumar, H K Taneja & S S Tomar
*Division of Soil Science & Agricultural Chemistry, IARI, New Delhi - 110 012
Division of Agricultural Chemicals, Indian Agricultural Research Institute
New Delhi - 110 012

**Abstract**

The nitrogen use efficiency of ammonical fertilizers in soil, particularly in tropics, is only 30-40% of the applied dose. The factors contributing to the low N-use efficiency include ammonia volatilization, nitrification, denitrification and nitrate leaching etc. These processes also contribute to health and environmental hazards. Nitrification seems to be the centre point of the problem leading to inefficient N-use, denitrification and nitrate leaching being just the consequences. Efforts are, therefore, underway all over the world to retard and regulate the soil microbes driven nitrification phenomenon. Most of the well established potential nitrification inhibitors are nitrogen containing heterocyclic compounds *viz* N-serve or nitrapyrin, 2-chloro-6-(trichloromethyl) pyridine, 2-ethynylpyridine, 5-ethoxy-3-trichloro-methyl-1,2,4-thiadiazole (etridiazole), 4-amino-1,2,4-triazole (ATC), 3-methyl pyrazole-1-carboxamide (MPC), 2,4-diamino-5trichloromethyl triazine and 2-amino-4-chloro-6-methyl pyrimidine etc. Compounds bearing thiocarbonyl moiety, owing to their tendency to form chelates with ammonia mono oxygenase (AMO) enzyme generally associated with *Nitrorosomonas europea*, the primary inhibitor of nitrification phenomenon, have also been reported to have potential nitrification inhibitory property. But none of the above chemicals have found favour with the farmers/industrialists due to high application cost. Oxidation of ammonia by *Nitrosomonas europea* bacteria that initiates the nitrification as a whole is a two-stage process that involves the initial oxidation of ammonia to hydroxylamine by the membrane bound enzyme known ammonia mono oxygenase, which has remarkably broad substrate range that can account for

the inhibitory effects of many compounds on this enzyme. Therefore, in our endeavour to develop viable N-regulators for soil-applied urea some simple heterocyclic molecules were synthesized and evaluated in the laboratory. A series of substituted iso oxazoles, which was synthesized by condensation of appropriate unsaturated carbonyl compounds with hydroxyl ammonium hydrochloride, has exhibited wide range of nitrification inhibitory activity. The laboratory incubation experiments were carried out in a typic Haplustept. The compounds were screened at 10% of applied urea-N dose and incubated for a period of 28 days at 28±2ºC, maintaining moisture at 50% of the water holding capacity of the soil. Evaluated weekly over a period of four weeks, most of the test compounds had been found to be mild inhibitors of nitrification. 5-phenyl iso oxazole and 3-methyl-5-(4'-methoxy phenyl) iso oxazole were found to be best among the series and were comparable to dicyandiamide the reference nitrification regulator. During the first week of application, these chemicals showed 78.2 and 82.6% nitrification inhibition, respectively as compared to 85.1% by dicyandiamide. The effect however, was considerably reduced by third and fourth week. The study indicated that the above compounds could be used as nitrification regulators for soil applied urea-N.

भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान पत्रिका
वर्ष 15 अंक 1 जून 2007 पृ. 18-22

# धान एवं गेहूं फसल-प्रणाली में सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपयोगिता पर सांख्यिकीय अन्वेषण

राजेन्द्र कुमार, निर्भय पाल सिंह एवं ज्ञान सिंह
भारतीय कृषि सांख्यिकी अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली - 110 012

**सारांश :** कृषि उत्पादन जलवायु, भूमि उर्वरकता एवं अन्य फसल सुधार जैसे उर्वरकों, खादों, पौधों की उन्नत किस्मों, सिंचाई के साधन, फसल-क्रम, पादप संरक्षण के तरीकों तथा कृषि कार्य की विधियों आदि पर निर्भर करता है। फसलों के उत्पादन में पौधों की पौष्टिकता और भूमि की उर्वरकता में सुधार करके वृद्धि की जा सकती है। प्रायः भूमि की संरचना किसी विशेष पोषक तत्व की कमी के कारण अधिकतम उत्पादन में बाधक होती है। फसल के उचित विकास के लिये 16 पोषक तत्व पौधों के भोजन के लिये अनिवार्य हैं। इस उद्देश्य के लिये निर्धारित नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश की मात्रा के साथ सूक्ष्म पोषक तत्वों (micronutrients) के प्रभाव को जांचने के लिये धान एवं गेहूं फसल प्रणाली के अंतर्गत अर्ध-शुष्क जलवायु में 1997-98 से 2000-01 वर्ष के दौरान कानपुर केन्द्र पर एक परीक्षण किया गया। इस परीक्षण के संयुक्त विश्लेषण के परिणामों से यह निष्कर्ष निकला कि सल्फर, जिंक क्लोराइड या जिंक ऑक्साइड और जिंक सल्फेट के हर स्तर पर प्रयोग से फसल उत्पादन एवं सकल प्राप्ति में लगातार वृद्धि हुई। खरीफ और रबी के अनाज की कुल सकल प्राप्ति में 26% की वृद्धि हुई जबकि जिंक की मात्रा जिंक सल्फेट के रूप में 10kg/ha निर्धारित नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश की मात्रा के साथ फसल बोते समय दी गई। खरीफ की फसल में एक वर्ष छोड़कर दूसरे वर्ष सूक्ष्म पोषक तत्व डालने की अपेक्षा प्रतिवर्ष डालने पर अनाज एवं भूसा उत्पादन तथा सकल प्राप्ति में वृद्धि रिकार्ड की गई।

# Statistical investigation on use of application of micronutrients in rice-wheat cropping system

Rajendra Kumar, N P Singh & Gyan Singh
Indian Agricultural Statistics Research Institute, New Delhi 110 012

**Abstract**

Agricultural production depends on environmental factors such as climate, soil fertility and other several crop improvement measures like fertilizers, manures, improved crop varieties, irrigation, cropping pattern, plant protection measures and cultural practices etc. Crop productivity can be maximized by improving plant nutrients and soil fertility. Often soil conditions do not support optimum growth due to lack of or low doses of specific nutrients. Sixteen plant

food nutrients are essential for proper crop development. For this purpose, an experiment on monitoring of macro- and micro- nutrients with recommended dose of NPK in rice-wheat cropping system under semi-arid eco-system was conducted during the period 1997-98 to 2000-01 at CSR centre Kanpur. The results of the combined analysis of these experiments revealed that the grain and straw yields and gross returns increased due to the application of all levels of sulphur, zinc chloride or zinc oxide and zinc sulphate. Total gross returns of grain yields for both the crops in kharif and rabi seasons were found significant when higher dose of zinc at 10 kg/ha as basal in the form of zinc sulphate with recommended dose of NPK applied. It was 26% higher than control. The micronutrients were applied every year in kharif season gave higher yields of both grain and straw and also gross return of yields for both seasons than micronutrients applied alternate year in kharif season.

भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान पत्रिका
वर्ष 15 अंक 1 जून 2007 पृ. 23-28

# यकृत व्याधियों में विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों की उपयोगिता

निखिल अग्निहोत्री, नरेन्द्र मोहन एवं अनुराग शर्मा
पर्यावरण शोध इकाई, वनस्पति विज्ञान विभाग, डी ए वी कॉलेज, कानपुर
रवीन्द्रनाथ मुखर्जी आयुर्वेदिक चिकित्सा महाविद्यालय एवं चिकित्सालय, मोतिहारी, (बिहार)

**सारांशः** जलवायवीय विविधताओं एवं विशिष्ट भौगोलिक संरचना के कारण भारत का पादप विविधता के क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान है। विश्व की कुल ज्ञात पादप प्रजातियों में से 47,900 प्रजातियां अकेले भारत में ही पाई जाती हैं, इनमें से 8000 से अधिक प्रजातियां प्राचीन काल से ही अनेक व्याधियों के उपचार हेतु प्रयोग में लाई जा रही हैं। औषधीय महत्व की अनेक वनस्पतियां वन्य रूप में स्वतः ही उगी हुई पायी जाती हैं। अनेक वनस्पतियां आयुर्वेदिक, यूनानी, सिद्ध, स्थानीय एवं क्षेत्रीय चिकित्सा पद्धतियों के साथ-साथ एलोपैथिक एवं होम्योपैथिक पद्धतियों में भी प्रयोग की जा रही हैं। मध्य उत्तर प्रदेश में ऐसी अनेक वनस्पतियां हैं जो यकृत रोगों में लाभदायक हैं और राजमार्गों, रेलमार्गों, जलभराव वाली भूमि के आस-पास एवं अन्य असुरक्षित क्षेत्रों में स्वतः उगती हुई पायी जाती हैं। प्रस्तुत अध्ययन में इनमें से 30 से अधिक वनस्पतियों की पहचान कर उनके स्थानीय नाम, वानस्पतिक नाम, स्वभाव, प्राप्ति स्थान एवं यकृत व्याधियों में उनकी उपयोगिता का विश्लेषण किया गया है। चिन्हित की गई वनस्पतियों में *ओसीमम सैंक्टम* लिन (तुलसी), *टिनोस्पोरा कार्डीफोलिया* (गिलोय), *एक्लिप्टा एल्बा* (भृंगराज), *बोरहाविया डिफ्यूजा* लिन. (पुनर्नवा), *एंड्रोग्रैफ़िस पैनिकुलेटा* (कालमेघ), *चीनोपोडियम एल्बम* लिन. (बथुआ), *सोलेनम नाइग्रम* लिन. (मकोय), *एलो वेरा* (घी क्वार), *फ़ाइलैंथस निरूरी* (भूमि आंवला), *ऐब्रस प्रिकेटोरियस* लिन. (घुमची), *सोंकस ओलिरेसियस* लिन. (डोडक), *ईगल मॉर्मेलॉस* (बेल), *एमब्लिका ऑफिसिनेलिस* (आंवला), *कैसिया फ़िस्टुला* लिन. (अमलताश) आदि प्रमुख हैं। अधिकांश वनस्पतियां सर्वसुलभ एवं वर्ष भर पाई जाने वाली हैं तथा ये हैपेटाइटिस, पीलिया, यकृतशोथ, जलोदर, यकृत वृद्धि जैसी यकृत व्याधियों के उपचार में अत्यन्त उपयोगी हैं। अतः इन महत्वपूर्ण औषधीय वनस्पतियों को संरक्षण देकर चिकित्सा को सस्ता, प्रतिक्रियाहीन, सुरक्षित एवं सर्वसुलभ बनाया जा सकता है।

# Utilisation of different kinds of Plants in liver diseases

Nikhil Agnihotri, Narendra Mohan & Anurag Sharma*
Paryavaran Sodh Ekai, Department of Botany, D A V College,
Kanpur
Ravindra Nath Mukherjee Ayurvedic Medical College and Hospital, Motihari (Bihar)

**Abstract**

India occupies a specfic place in plant diversity by its atmospheric characteristics and special geographical structure. About 47,900 species are found in India among known plant species in the world, more than 8000 of these species are used as a remedial since ancient time. Many medicinal plants are self-grown as wild form. Out of these, many plants are used in Ayurvedic, Unani, Siddha, local and regional systems of medicine in addition to Allopathic and Homoeopathic systems. Many wild plants are found self-grown besides highways railway lines, water logged lands and other unsafe places of central U P, which are useful in liver diseases. In this study, more than 30 plants are identified and analysed with their local names, botanical names, habitat and their medicinal uses in liver diseases. The identified plants are *Ocimum sanctum*

Linn. (Holy Basil), *Tinospora cordifolia* (Heart leaved moon seed), *Eclipta alba* (Bhrangraj), *Boerhaavia diffusa* Linn. (Punarnava), *Andrographis peniculata* (Kiryat), *Chenopodium alum* Linn. (Pigweed), *Solanum nigrum* Linn. (Black night shade), *Aloe vera* (Aloe), *Phyllanthus neruri* (Bhumi amala), *Abrus precatorius* Linn. (Indian liquorice), *Sonchus oleraceus* Linn. (Dodak), *Emblica offcinalis* (Emblic) *Aegle marmelos* Linn. (Bel), *Cassia Fistula* Linn. (Indian laburnum) etc. Most of the plants are easily available throughout the year and they are used for the treatment of liver diseases including hepatitis, jaundice, cirrhosis of liver, ascites, liver enlargement etc. By conserving these valuable medicinal plants we can make treatment cheaper, non-reactive, safer and easily accessible to everyone.

भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान पत्रिका
वर्ष 15 अंक 1 जून 2007 पृ. 29-32

# बेल (*ईगल मार्मेलोस*) के बीजों का चूहों की अल्पग्लूकोजरक्तता क्रियाशीलता पर प्रभाव

अच्युत नारायण केसरी, राजेश कुमार गुप्ता एवं गीता वातल
मेडिसिनल रिसर्च लेबोरेट्री, रसायन विज्ञान विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (उ.प्र.)

**सारांशः** बेल जिसका वानस्पतिक नाम *ईगल मार्मेलोस* है, के बीजों के जलीय अर्क का सामान्य एवं स्ट्रेप्टोजोटोसिन जनित अधः एवं मृदु चूहों पर परीक्षण किया गया। जलीय अर्क का सबसे पहला परीक्षण स्वस्थ चूहों पर रात्रि उपवास के बाद किया गया। उनकी रक्त शर्करा की जांच की गयी और फिर विभिन्न समूहों को 100, 250 एवं 500 mg/kg b.w. का जलीय अर्क दिया गया। यह पाया गया कि 250 mg/kg b.w. का अर्क सबसे अधिक प्रभावशाली ढंग से कार्य करता है और 6 घण्टे बाद रक्त शर्करा के स्तर को 35.1% तक कम कर देता है। अधः मृदु चूहों पर ग्लूकोस सहता परीक्षण (GTT) भी किया गया। ग्लूकोस सहता परीक्षण में रात्रि उपवास के बाद चूहों की रक्त शर्करा की जांच की जाती है और फिर विभिन्न समूहों को 100, 250 एवं 500 mg/kg b.w. का जलीय अर्क दिया जाता है। 90 मिनट बाद उनकी रक्त शर्करा की पुनः जांच की जाती है और फिर उन्हें 3 g/kg b.w. के हिसाब से ग्लूकोस पिलाया जाता है। ग्लूकोस पिलाने के 1, 2 एवं 3 घण्टे बाद उनकी रक्त शर्करा की जांच की जाती है। 250 mg/kg की मात्रा 2 घण्टे में अधः एवं मृदु चूहों की रक्त शर्करा को क्रमशः 41.2% एवं 33. 2% घटा देती है। इन परिणामों से यह सिद्ध होता है कि बेल के बीजों में मधुमेह प्रतिरोध क्षमता पायी जाती है और इनका प्रयोग मधुमेह ग्रसित मनुष्यों द्वारा किया जा सकता है।

# Effect of *Aegle marmelos* seed extract on hypoglycemic activity of experimental rats

Achyut Narayan Kesari, Rajesh Kumar Gupta & Geeta Watal
Medicinal Research Lab, Department of Chemistry, University of Allahabad,
Allahabad – 211 002 India

.

**Abstract**

*Aegle marmelos* Corr. (Rutaceae) is widely used in Indian Ayurvedic medicine for the treatment of diabetes mellitus. The aqueous extract of *Aegle marmelos* seeds was administered orally at different doses (100, 250 & 500 mg/kg) to normal as well as sub (FBG normal; glucose tolerance abnormal) and mild (FBG 120-250 mg/dl) diabetic rats. Initial testing was carried with the different doses of the seed extract in normal healthy rats fasted overnight. The animals were divided into groups. Control rats (group I) were given distilled water only while other groups II, III and IV received aqueous seed extract suspended in distilled water orally at doses 100, 250 and 500 mg/kg, respectively. The dose of 250 mg/kg was found to be most effective dose and it decreases blood glucose level (BGL) by 35.1% in normal healthy rats after 6 h of administration. The hypoglycemic effect of aqueous extract of *A. marmelos* seeds in sub and mild diabetic rats was assessed by improvement of glucose tolerance. FBG was checked in overnight fasted rats and were divided in to several groups . Control groups of sub and mild diabetic animals received distilled water only, whereas variable doses of 100, 250 and 500 mg/kg of aqueous seed extract were administered orally to rest of

the groups of each, sub and mild diabetic animals. The rats of all the groups were given glucose (3 g/kg) after 90 min of the extract and drug administration. Blood samples were collected just prior to glucose administration (0 h) and 1, 2 and 3 h after glucose loading. The dose of 250 mg/kg again showed a marked reduction in BGL of 41.2% in sub and 33.2% in mild diabetic rats in glucose tolerance test after 2 h. The findings from this study suggest that the aqueous extract

भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान पत्रिका
वर्ष 15 अंक 1 जून 2007 पृ. 33-36

# अरहर की पत्तियों का प्रयोगशाला चूहों की रक्त शर्करा पर प्रभाव

डॉली जायसवाल, प्रशान्त कुमार राय, अमित कुमार एवं गीता वातल
औषधीय अनुसंधान प्रयोगशाला, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद 211 002 (उ.प्र.)

**सारांश :** वर्तमान अध्ययन में अरहर की पत्तियों का जलीय निष्कर्षण करके प्राप्त अर्क का स्ट्रेप्टोजोटोसीन जनित द्वितीय वर्ग मधुमेही चूहों की रक्त शर्करा स्तर का परीक्षण किया गया। अरहर की पत्तियों के जलीय अर्क की 500, 750 तथा 1000 mg/kg शरीर भार वाली खुराक को मुखीय विधि द्वारा स्वस्थ सामान्य चूहों को देने पर उनकी उपवास रक्त शर्करा में क्रमशः 7.58, 10.28 तथा 14.30% की वृद्धि दर्ज की गई। 1000 mg/kg शरीर भार की जलीय अर्क की एक खुराक का सामान्य उप मधुमेही तथा मृदु मधुमेही चूहों पर ग्लूकोज सहृदता परीक्षण करने पर रक्त ग्लूकोज शर्करा में अधिकतम वृद्धि क्रमशः 17.0, 71.3 तथा 50.8% दर्ज की गई। पूर्व विदित अरहर के बीजों के निम्न रक्त शर्करा स्तर प्रभाव को ध्यान में रखते हुए अरहर की पत्तियों के प्रभाव का परीक्षण करने के लिए यह अध्ययन किया गया। इस परीक्षण द्वारा जो परिणाम प्राप्त हुए वे बिल्कुल ही अप्रत्याशित तथा प्रतिकूल थे। अतः इस जलीय अर्क का प्रयोग इंसुलिन तथा अन्य रक्त शर्करा को घटाने वाली औषधियों की अधिक मात्रा के प्रयोग के परिणामस्वरूप होने वाली रक्त शर्करा न्यूनता को नियंत्रित करने के लिए किया जा सकता है।

# Study of glycemic profile of *Cajanus cajan* leaves in experimental rats

Dolly Jaiswal, Prashant Kumar Rai, Amit Kumar & Geeta Watal
Alternative Therapeutics Unit, Drug Development Division, Medicinal Research Lab,
Department of Chemistry; University of Allahabad, Allahabad 211 002 (U.P.)

**Abstract**

*Cajanus cajan* K (Millsp) is commonly known as pigeon pea (or red gram). It is an important pulse crop of the tropical regions. The present study deals with the aqueous extract of *Cajanus cajan* leaves and evaluation of its glycemic profile in Streptozotocin induced type-2 diabetic rats. Single oral administration of graded doses of aqueous extract of leaves showed significant increase in fasting blood glucose levels (FBG) of normal rats by 14.3%. The mild diabetic and sub-diabetic animals had shown hyperglycemic effect from variable doses of extract. The maximum rise of 17.0, 71.3 and 50.8 % was observed in BGL from a dose of 1000 mg/kg body weight after administration in normal, sub and mild diabetic rats, respectively during glucose tolerance test (GTT). The study of leaves was taken into consideration on the basis of earlier reported hypoglycemic activity of Cajanus cajan seeds. However, the results observed were found just opposite and therefore it may be useful in controlling hypoglycemia, occasionally caused due to excess of insulin and other hypoglycemic drugs.

भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान पत्रिका
वर्ष 15 अंक 1 जून 2007 पृ. 37-43

# धान (*ओराइज़ा सैटाइवा*) - गेहूं (*ट्रिटिकम एस्टिवम*) फसल-चक्र में समन्वित पोषण प्रबन्ध

विजय कुमार, ओ पी सिंह एवं वीरेन्द्र कुमार
जनता वैदिक (पी.जी.) कॉलेज, बड़ौत, जिला बागपत, (उ.प्र.)
*सस्य विज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली-110 012

**सारांश :** पश्चिमी उत्तर प्रदेश में धान-गेहूं फसल-चक्र के अन्तर्गत धान की फसल पर कार्बनिक खादों और रासायनिक उर्वरकों के प्रभाव का अध्ययन करने हेतु जनता वैदिक कॉलेज, बडौत, बागपत के अनुसंधान प्रक्षेत्र पर वर्ष 2003-04 व 2004-05 की खरीफ और रबी ऋतु में प्रयोग किये गये। धान और गेहूं की वृद्धि और उपज से संबंधित एकत्रित आंकड़ों का विश्लेषण करने पर पाया गया कि धान की फसल में प्रयोग किये गये कार्बनिक खादों (गोबर की खाद, मुर्गी खाद और गोबर + मुर्गी खाद) का फसल की वृद्धि, उपज और उपज घटकों पर अनुपचारित-नियंत्रण की तुलना में सार्थक अन्तर पाया गया। कार्बनिक खादों का प्रयोग करने पर धान की उपज में नियन्त्रण की तुलना में 16.1 से 18.8% की वद्धि दर्ज की गयी जबकि गोबर की खाद, मुर्गी खाद और गोबर + मुर्गी खादों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर प्रायः धान की बढ़वार और उपज समपरिमाप पाई गयी। आंकड़ों का अध्ययन करने पर यह भी ज्ञात हुआ कि धान की खेती से अधिकतम शुद्ध लाभ (रु. 14,755/ha) गोबर व मुर्गी खाद को संयुक्त रूप से देने पर हुआ। रासायनिक उर्वरकों के संदर्भ में धान की अधिकतम औसत उपज (45.4 q/ha) $N_{120}$ $P_{60}$ $Zn_{25}$ kg/ha को देने पर पाई गयी। प्रयोगों के दोनों वर्षों के औसत के आधार पर धान की फसल द्वारा अधिकतम नाइट्रोजन अवशोषण (94.9 kg/ha) गोबर व मुर्गी खाद को संयुक्त रूप से देने पर पाई गयी। फसल कटाई के उपरान्त कार्बनिक खादों द्वारा उपचारित मिट्टी में आर्गेनिक कार्बन और उपलब्ध नाइट्रोजन की मात्रा नियन्त्रण की तुलना में सार्थक रूप से अधिक पायी गई।

# Integrated nutrient management in rice (*Oryza sativa*)-wheat (*Triticum aestivum*) cropping system

Vijay Kumar, O P Singh & Virendra Kumar*
Janta Vedic (PG) College, Baraut, Bagpat (U.P.)
*Agronomy Division, Indian Agricultural Research Institute, New Delhi 110012

**Abstract**

To study the effect of organic manures and chemical fertilizers in rice under western Uttar Pradesh conditions a field experiment was conducted at the research farm of Janta Vedic College, Baraut, District Bagpat (U.P.) during the rainy and winter seasons of 2003-04 and 2004-05 with rice-wheat cropping system Incorporation of organic manures (FYM, poultry manure and FYM+ poultry manure) significantly recorded higher crop growth, yield and yield attributes of rice as compared to control. Organic manures increased the mean grain yield of rice by 16.1 to 18.8% over control. However, farm yard manure, poultry manure and FYM + poultry manure produced growth and yield of rice at par. Results revealed that the combined use of farm yard and poultry manure fetched maximum mean net returns of Rs 14,755 in rice cultivation. In reference to chemical fertilizers the maximum mean grain yield of rice (45.4 q/ha) was observed with $N_{120}P_{60}Zn_{25}$ kg/ha. Based on two years experiments, maximum mean nitrogen uptake (94.9 kg/ha) was recorded under combined use of farm yard and poultry manures. Incorporation of organic manures caused improvement in organic carbon

भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान पत्रिका
वर्ष 15 अंक 1 जून 2007 पृ. 44-50

# कार्बनिक विलयन की अनुपस्थिति में कम ताप पर *पोंगैमिया ग्लेब्रा* तेल से पॉलिएस्टर एमाइड का निर्माण

फहमीना ज़फर, एस एम अशरफ एवं शरीफ अहमद
मैटीरियल्स शोध प्रयोगशाला, रसायन विज्ञान विभाग, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली-110025

**सारांश :** विभिन्न बीजों के तेलों को पेट्रोलियम पर आधारित कच्चे पदार्थों का आदर्श विकल्प माना जाता है क्योंकि वे सस्ते, विषहीन, जैवअपघटनी और पर्यावरण अनुकूल होते हैं तथा दुनिया भर में अधिकतर मात्रा में पाए जाते हैं। *पोंगैमिया ग्लेब्रा* नामक पादप से प्राप्त तेल, जो न तो खाने योग्य है और न ही इसकी परत जल्दी शुष्क होती है, का प्रयोग एल्किड्स, इपॉक्सीज़ और पॉलिएस्टरएमाइड के निर्माण में हो रहा है। इन बहुलकों का प्रयोग संरक्षात्मक रंगों एंव रंगों की परत वाले पदार्थों में किया जा रहा है। *पोंगैमिया ग्लेब्रा* तैलीय बीज पर आधारित पॉलिएस्टरएमाइड का उत्पादन कार्बनिक विलयन की अनुपस्थिति में कम तापमान (85±5°C) पर संघनन बहुलकीकरण के अन्तर्गत होता है (Sf-PGPEA)। इस प्रतिक्रिया में एन, एन, बिस- 2 (हाइड्रॉक्सीइथाइल) *पोंगैमिया ग्लेब्रा* वसीय एमाइड, (PGPEA) एवं थैलिक एनहाइड्राइड [PA] को उनके गलनांक से कम तापमान पर गरम किया गया और पानी को निर्वात तकनीक द्वारा निकाला गया। इस तकनीक द्वारा कम अणु भार वाले बहुलक के उत्पादन और प्रयोग में आने वाले वाष्पशील कार्बनिक विलयन (VOCs), जो पर्यावरण के लिए हानिकारक पदार्थ हैं, के विरुद्ध इस्तेमाल किया गया, इसके साथ-साथ न खाने योग्य तेल को बहुमूल्य बहुलक में परिवर्तित किया गया। FTIR, $^{1}$H-NMR और $^{13}$C-NMR स्पैक्ट्रल तकनीकों द्वारा Sf-PGPEA की रूपरेखा निश्चित की है। इस बहुलक की भौत-रासायनिक एवं भौत-यांत्रिक और रसायन विरोधी गुणधर्मों की खोज अतिउत्तम ढंग से की गई है। DSC एवं TGA प्रयोग द्वारा इस बहुलक की परत सूखने का व्यवहार एवं तापीय दृढ़ता को निश्चित किया है। Sf-PGPEA का तुलनात्मक अध्ययन PGPEA से किया गया जिसका उत्पादन सामान्य रूप से अधिक तापमान एवं वाष्पशील कार्बनिक विलयन की उपस्थिति में होता है। यह पाया गया कि Sf-PGPEA भौत-रासायनिक एवं भौत-यांत्रिक और रसायन विरोधी गुणों तथा तापीय दृढ़ता में PGPEA से अधिक विकसित है। अतः Sf-PGPEA का प्रयोग जंक सुरक्षित पर्यावरण मित्र रंग की परत वाले पदार्थ के तौर पर किया जा सकता है।

# Low temperature development of *Pongamia glabra* seed oil based polyesteramide without organic solvent

Fahmina Zafar, S M Ashraf & Sharif Ahmad
Materials Research Laboratory, Department of Chemistry
Jamia Millia Islamia, New Delhi-110025, India

**Abstract**

Seed oils are expected to be an ideal alternative renewable resource to petroleum-based raw materials since they are inexpensive, non-toxic, biodegradable and relatively harmless to the environment as well as are found in abundance over the world. *Pongamia glabra* seed oil—a non-edible and non-drying oil has found application as alkyds, epoxies and polyesteramide based protective paints and coating materials. *Pongamia glabra* seed oil based polyesteramide was synthesized at lower temperature (85±5°C) in the absence of organic solvent through condensation polymerization reaction [Sf-PGPEA]. In this reaction N, N, bis- (2 hydroxyethyl) *pongamia glabra* fatty amide [HEPGA] and phthalic anhydride [PA] were heated at temperature lower than their onset of melting points and the by-product such as water was removed by application of vacuum technique. This approach was employed to overcome the use of volatile organic contents [VOCs] used during processing and application of resin, which are ecologically harmful as well as convert the non-edible oil into value added product. The FTIR, $^{1}$H-NMR and $^{13}$C-NMR spectral techniques were used to confirm the structure of Sf-PGPEA. The physico-chemical, physico-mechanical and chemical resistance properties of the resin were investigated by standard methods. DSC and TGA were used to determine respectively the curing behaviour and thermal stability of the resin. The comparative study of these properties of Sf-PGPEA with reported

polyesteramide [PGPEA], which are normally synthesized at higher temperature in organic solvent, was done. It was found that Sf-PGPEA exhibited improved physico-mechanical, chemical resistance properties and higher thermal stability compared to PGPEA, and hence can find application as corrosion protective eco-friendly coating material.

भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान पत्रिका
वर्ष 15 अंक 1 जून 2007 पृ. 51-56

# कूर्चक-कवकमूल तथा *राइजोबियम* द्वारा द्वि-उपचारित *फैसियोलस वल्गेरिस* लिनियस में जैवरासायनिक परिवर्तन

नीरज एवं कविता सिंह
वनस्पति विज्ञान विभाग, फ़िरोज़ गाँधी कालेज
रायबरेली - 229 001 (उ.प्र.)

**सारांश :** क्षेत्रीय परीक्षण में *फ़ेसियोलस वल्गेरिस* लिनिअस पौधों का चार कूर्चक कवकमूल प्रजातियों - *जाइगास्पोरा ऐल्बिडा, गलोमस ऐल्बिडम, स्क्लेरोसिस्टिस साइन्यूसा* तथा *स्क्यूटेलोस्पोरा एरिथ्रोपा* में से प्रत्येक को अलग-अलग *राइजोबियम* अथवा/और फॉस्फेटिक उर्वरक की अर्ध-संस्तुत मात्रा के साथ द्वि-उपचारण किया गया। फॉस्फेटिक उर्वरक की संस्तुत पूर्ण मात्रा द्वारा उपचारित पौधों एवं अनुपचारित पौधों को तुलनात्मक नियन्त्रण के लिए प्रयोग किया गया। पौधों की जड़, तना तथा पत्तियों में बुआई के 45वें तथा 75वें दिन अमीनो एसिड, प्रोटीन, फिनॉल तथा न्यूट्रल लिपिड तत्वों का परिमाणात्मक अध्ययन किया गया। तुलनात्मक निर्धारण से यह ज्ञात हुआ कि बुआई के 75वें दिन पौधों की पत्तियों में द्विरोपण के कारण अमीनो एसिड, प्रोटीन एवं फिनॉल तत्व में वृद्धि हुई जबकि न्यूट्रल लिपिड की सान्द्रता में कूर्चक कवकमूल + रासायनिक फॉस्फोरस के कारण वृद्धि हुई। परिणामों से यह निष्कर्ष भी निकला कि अनुपचारित पौधों की तुलना में उपचारित पौधों के विभिन्न अंगों में न्यूट्रल लिपिड एवं प्रोटीन की परिमाणात्मक वृद्धि अधिक हुई जबकि अमीनो एसिड एवं फिनॉल की वृद्धि तुलनात्मक रूप से कम थी। कूर्चक कवकविहीन मूल पौधों की तुलना में उपचारित पौधों की पत्तियों में प्रोटीन, न्यूट्रल लिपिड एवं फिनॉल तत्व 12-13% अधिक थे, जबकि एमीनो एसिड 18-19% अधिक पाया गया।

# Biochemical changes in *Phaseolus vulgaris* L. dual inoculated with arbuscular - mycorrhizal Fungi and *Rhizobium*

Neeraj & Kavita Singh
Botany Department, Feroz Gandhi College
Rae Bareli - 229 001

**Abstract**

A field experiment was conducted with *Phaseolus vulgais* L. plants inoculated with one of the four AM-fungal strains viz. *Gigaspora albida, Glomus albidum, Sclerocystis sinuosa* and *Scutellospora erythropa* plus *Rhizobium* and / or one-half dose of phosphatic fertilizer. The root, shoot and leaves of plants were assayed for amino acid, protein, phenol and neutral lipid contents at 45 days after sowing (DAS) and 75 DAS. Comparative assessment revealed that amino acid, protein and phenol contents were maximum in the leaves of dual inoculated plants whereas neutral lipid concentration was maximum in the leaves of plants treated with AM-fungi plus one-half dose of chemical phosphorus at 75 DAS. Results also revealed that the neutral lipids and proteins were found to be higher in different plant parts whereas amino acids and phenols were comparatively lesser. However, when compared with un-inoculated plants, AMF inoculated plant parts contained more amino acid, protein, phenol and neutral lipids. Protein, neutral lipid and phenol contents in the leaves were 12-13% more than the non-mycorrhizal plants, whereas amino acid was 18-19 % more than the plants treated with full dose of phosphatic fertilizer as well as untreated control plants.

भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान पत्रिका
वर्ष 15 अंक 1 जून 2007 पृ. 57-60

# उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में मसूर की विभिन्न प्रजातियों पर गन्धक का प्रभाव

आर बी यादव, एच आर सिंह, आर वी सिंह एवं एच एस यादव
सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, मेरठ 250 110 (उ.प्र.)

**सांराश :** उत्तरी भारत के मैदानी क्षेत्रों में मसूर की विभिन्न प्रजातियों पर गंधक का प्रभाव ज्ञात करने के लिए सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, मेरठ के रामपुर स्थित कृषि विज्ञान केन्द्र के अनुसंधान फार्म पर सन् 2003-04 एवं सन् 2004-05 के दौरान रबी ऋतु में एक प्रयोग किया गया। इस प्रयोग में मसूर की तीन प्रजातियां पी. एल.-4, पी. एल.-406 तथा पी. एल.-5 तथा गन्धक की चार मात्राएं 0, 20, 40, 60kg/ha ली गईं। इन्हें तीन पुनरावृत्तियों में रेन्डोमाइन्ड ब्लॉक डिज़ाइन में लगाया गया। परिणामों से स्पष्ट हुआ कि मसूर की प्रजाति पी.एल.-406 में औसत आधार पर अन्य प्रजातियों की अपेक्षा सबसे अधिक दाने की उपज (17.96 q/ha) प्राप्त हुई। इसमें शुद्ध लाभ रु. 16496/ha एवं लाभ : लागत अनुपात 2:13 मिला। इसके बाद प्रजाति पी.एल.-4 का स्थान रहा। मसूर की उपज, उपज बढ़ाने वाले कारक प्रोटीन तत्व, कुल प्रोटीन, उत्पादन तथा आर्थिक लाभ 40kg गन्धक/ha तक बढ़ाने पर मिला। इस अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र के लिए पी. एल.-406 प्रजाति सर्वोत्तम पायी गयी तथा यहां की मृदा में अच्छी पादप वृद्धि व उपज के लिए गन्धक का प्रयोग आवश्यक है।

# Response of lentil (*Lens culinaris*) cultivars to sulphur application in north Indian plains

R B Yadav, H R Singh, R V Singh & H S Yadav
S V B Patel University of Agriculture & Technology, Meerut 250 110 (U.P.)

**Abstract**

A field experiment was conducted during the rabi seasons of 2003-04 and 2004-05 at research farm of KVK Rampur of SVBPUAT, Meerut, to study the response of lentil (*Lens culinaris*) cultivars to sulphur levels in north Indian plains. Study revealed that lentil cultivar PL-406 gave significantly maximum grain yield (17.96q/ha) on mean basis in comparison to other cultivars. The highest net income, Rs. 16496/ha and benefit: cost ratio, 2:13 was also recorded in the same variety followed by PL-4. Yield and yield attributes of lentil, protein content in grain, total production and net income increased significantly with increasing levels of suphur up to 40kg/ha. It is concluded that lentil cultivar PL-406 is most suitable variety for this region and there is deficiency of sulphur in the soils of this region, hence it is necessary to apply sulphur in these soils to obtain optimum crop growth and yield of lentil crop.

भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान पत्रिका
वर्ष 15 अंक 1 जून 2007 पृ. 61-62

# प्रतिरोधी लाहा किस्मों के प्रयोग से समृद्धि संभव

अवधेश कुमार शुक्ल
राष्ट्रीय सरसों अनुसंधान केन्द्र, भरतपुर - 321303 (राजस्थान)

**सारांश :** राई/लाहा की छः किस्मों बसन्ती, जी.एम. 2, अरावली (आर.एन. 393), उर्वशी, पूसा अग्रणी (सेज 2) एवं वरुणा (टी 59) की उपज क्षमता के समुचित आकलन हेतु खेत में बड़े भूखण्डों (5 × 4m) में लगे प्रयोगों से स्पष्ट हुआ कि रोगों से सुग्राही व अतिसुग्राही किस्मों की अपेक्षा प्रतिरोधी अथवा मध्यम प्रतिरोधी किस्में अपनाना ज्यादा लाभदायक है। प्रतिरोधी और मध्यम प्रतिरोधी किस्मों की उपज 1394 से 1728kg/ha तक और अतिसुग्राही किस्म वरुणा की उपज 1350kg/ha पायी गयी।

# Harness the disease resistant Indian mustard

A K Shukla
National Research Centre on Rapeseed-Mustard, Bharatpur – 321 303 (Rajasthan)

**Abstract**

Six Indian mustard varieties. *viz*., Basanti, GM 2, Aravali (RN 393), Uravashi, Pusa Agrani (Sej 2) and Varuna (T 59) were chosen to study their yield performance on bigger plot size (5 × 4m). Results revealed that use of resistant/moderately resistant varieties were more beneficial than susceptible/ highly susceptible varieties. Yield of resistant/ moderately resistant varieties was ranged 1394-1728kg/ha, while yield of highly susceptible variety Varuna was 1350kg/ha.

भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान पत्रिका
वर्ष 15 अंक 1 जून 2007 पृ. 63-66

# दूध से पौध व्याधियों पर नियंत्रण : एक अभिनव युक्ति

अरुण कुमार
केन्द्रीय रुक्ष क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर-342003 (राजस्थान)

**सारांश :** पौधों में रोगों के विरुद्ध कुदरती रोग प्रतिरोधक क्षमता को जागृत करना एक आकर्षक विचार है। गाय व अन्य पालतू पशुओं के दूध से पौध व्याधियों पर नियंत्रण संभव हो गया है। पौधों में दूध से रोग निवारण आश्चर्यजनक तो है परन्तु यह सत्य है। पौधों में रोग फैलाने वाले विभिन्न कारकों, जैसे कवक, जीवाणु एवं विषाणुओं को नियंत्रित करने में दूध की क्षमता के विषय में कई वैज्ञानिकों के शोध-पत्र उपलब्ध हैं। साथ ही भारतीय किसानों द्वारा सदियों से इसके प्रयोग से रोग निवारण संबंधी पारम्परिक ज्ञान का खजाना भी भारतीयों को विरासत में मिला है। दूध में लगभग सभी अमीनो अम्ल प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। दूध में पाया जाने वाला पोटेशियम फॉस्फेट भी सर्वांगी प्रतिरक्षण प्रक्रिया से पौधों में रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है। पौधों के भीतर स्रावित होने वाला प्रोलीन नामक अमीनो अम्ल साइटोकाइनिन व ऑक्सिन जैसे हॉर्मोनों द्वारा पौधों में मौजूद सर्वांगी प्रतिरक्षण तंत्र को प्रेरित करने में मदद करता है। हाल ही में हुए अनुसंधानों से पता चला है कि कृत्रिम रोगनाशी रसायनों के स्थान पर दूध का प्रयोग किया जा सकता है। जोधपुर स्थित केन्द्रीय रुक्ष क्षेत्र अनुसंधान संस्थान में दूध को लेकर किए गए प्रयोगों से फसलों के रोगों को नियंत्रित करने की दिशा में अभूतपूर्व सफलता मिली है। प्रस्तुत लेख में देसी गाय के दूध व मित्र कवकों के मिश्रित प्रभाव से बाजरा के तुलसिता या जोगिया (ग्रीन इयर रोग) व मिर्च के पर्ण कुंचन रोग (लीफ कर्ल रोग) के टिकाऊ व सरल प्रबंध पर किए गए प्रयोगों पर चर्चा की गई है। दूध व मित्र कवकों के प्रयोग से रोगों में कमी के साथ-साथ उपचारित पौधों की उपज व उत्पाद की गुणवत्ता में भी बढ़ोत्तरी दर्ज की गई।

# Managing plant diseases through milk : an innovative approach

Arun Kumar
Central Arid Zone Research Institute, Jodhpur-342 003 (Rajasthan)

**Abstract**

Invoking natural defense system of plants at the onset of disease is an appealing concept. Milk is an excellent source of nutrients and offers an exceptional medium for exploration. Milk has been described as natural inhibitor for managing plant viruses and fungal diseases with better sticking and spreading qualities. Cow and Goat milk have amino acids containing potassium phosphate, which boosts the immune system of plants through induced resistance. Endogenous proline encourages cytokinin and auxins to systemically induce resistance in plants. Research has identified milk as potential replacement for synthetic fungicides in the control of plant diseases. Experiments undertaken in Central Arid Zone Research Institute, Jodhpur have shown positive results. The present paper demonstrates the bio-efficacy of raw cow milk and its environment friendliness to manage the leaf curl disease of Chilli and downy mildew of Pearl Millet with seed and soil application of fungal bio-protectants. This resulted in considerable reduction in the incidence of diseases and improvement in the yield and quality of the produce.

भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान पत्रिका
वर्ष 15 अंक 1 जून 2007 पृ. 67-70

# सब्जियों में कीटों एवं रोगों के विरुद्ध प्रतिरोधकता बढ़ाने वाली स्वदेशी जादुई बलवर्धक औषधि

अशोक कुमार कनौजिया एवं सुमित्रा अरोड़ा
राष्ट्रीय समेकित नाशीजीव प्रबंधन केन्द्र, एल बी एस भवन, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली-110 012

**सारांश :** अधिकांश भारतीयों के शाकाहारी होने के कारण भारतीय भोजन में सब्जियों का बहुत बड़ा योगदान है। विश्व में चीन के बाद सब्जियों के उत्पादन में भारत दूसरे स्थान पर है। भारत में सब्जियों के उत्पादन के लिए 45 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल उपलब्ध है, जिसमें लगभग 750 लाख टन सब्जियों का उत्पादन किया जाता है। सब्जियों के उत्पाद कई कारकों, विशेषकर विभिन्न प्रकार के कीटों एवं रोगों द्वारा सीमित हो जाते हैं। पारितंत्र में गिरावट एवं रसायनों पर निर्भरता को कम करने के लिए पारम्परिक ज्ञान का समेकित नाशीजीव प्रबंधन में एक हिस्सा होना वाछंनीय है। अकेले सब्जियों के उत्पादन में कीटों के कारण 40% तक की हानि को सूचित किया गया है। सब्जियों पर कीटों का खतरा कोई नई बात नहीं है, और अधिकाधिक रसायनों के प्रयोग से भी इसका कोई समाधान निकलता नहीं दिखता है। पारम्परिक ज्ञान के अन्तर्गत जैव कीट नियंत्रण ने हाल ही में वैज्ञानिकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। आमतौर पर स्थान विशेष तथा खासतौर पर कीट नियंत्रण के लिए फसलों को कीटों से बचाने के लिए विभिन्न स्थानों पर की गई कृषि प्रणालियों एवं पद्धतियों का पालन किया जाता है। ये पद्धतियां पर्यावरण अनुकूल, प्रकृति-मित्र एवं आर्थिक रूप से सक्षम हैं। राष्ट्रीय समेकित नाशीजीव प्रबंधन केन्द्र, नई दिल्ली में चल रही एक अनुसंधान परियोजना के तहत महाराष्ट्र राज्य के अहमदनगर जिले में अकोला तहसील में किए गए सर्वेक्षण से एक सुरुचिपूर्ण पारम्परिक ज्ञान की खोज की गई। स्थानीय लोगों द्वारा इस ज्ञान का नाम जादू की बलवर्धक औषधि दिया गया है। इस औषधि को घर में उपलब्ध सामान जैसे शुद्ध घी, नीम के पत्तों का सत्व, गोमूत्र, छाछ, गुड़ एवं बाजरे के आटे से तैयार किया जाता है। इन सभी अवयवों का खमीरीकरण करके ऐसा नुस्खा तैयार किया जाता है, जो पौधों के लिए बलवर्धक की तरह काम करता है। यह सब्जियों में खासकर बैंगन, लोबिया एवं टमाटरों में कीट एवं रोग के विरुद्ध प्रतिरोधकता पैदा करता है। इससे इन फसलों के फलों की संवृद्धि एवं विकास में बढ़ोत्तरी होती है। बुरी तरह से झुलसा रोग से ग्रसित पौधे इसके प्रयोग के बाद ताकत एवं पुनर्जीवन हासिल कर लेते हैं। इसके प्रयोग से रासायनिक निर्विष्टों का इस्तेमाल कम हो जाता है। इस प्रकार से किसानों को आर्थिक रूप से लाभ होता है तथा पर्यावरण भी रासायनिक पदार्थों के जहरीले असर से सुरक्षित रहता है।

# Indigenous magical tonic to build resistance in vegetables against insect pests and diseases

Ashok K Kanojia & Sumitra Arora
National Centre for Integrated Pest Management, LBS Bhawan, IARI, Pusa, New Delhi-110 012, India

**Abstract**

Vegetables are the major constituents of Indian diet as majority of the Indians are vegetarian. India is the second largest producer of vegetables after China, producing about 75 million tonnes. The existing area under vegetable cultivation in India is around 4.5 million ha. However, there are several factors that limit the productivity of the vegetables, mainly the insect pests and diseases. Traditional knowledge should essentially be a component of integrated pest management to reduce the dependence on chemical pesticides and ecological deterioration. The insect pests inflict crop losses to the tune of 40% in vegetable production. Menace of pests on vegetables is not a hidden phenomenon and the use of more and more insecticides has not solved the purpose. Traditional practices of biological pest control have recently been the subject of increasing scientific interest as age-old location specific farming practices in general and pest management in particular are followed in different regions for managing crop pests. These practices are environmentally sound, nature friendly and economically feasible. One of the interesting indigenous knowledge has been explored from Akoli Tehshil of Ahmadnagar district in Maharashtra by conducting a survey to explore traditional practice in plant protection under one of the institute's research projects. This indigenous knowledge is locally known as *magical tonic* which is prepared from homely available materials like pure ghee, neem leaves extract, cow urine, butter milk/chhach, jaggery and bajra flour. A formulation is obtained after fermentation of these ingredients. The formulation acts as plant tonic, which builds up resistance to withstand pests and diseases in vegetables, particularly brinjal, beans, and tomatoes. The growth and development of fruits also get enhanced. Plants with severe wilt got rejuvenated after its application and attained strength and vigour. It helps in reducing the application of chemical inputs. Thus, farmers get economical gains besides keeping the environment safe from the hazardous impact of synthetic pesticides.

भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान पत्रिका
वर्ष 15 अंक 1 जून 2007 पृ. 71-73

# उत्तर भारत के मैदानी भागों में गेहूँ की वृद्धि एवं उपज पर मेंथा स्लरी का प्रभाव

आर बी यादव, एच आर सिंह, आर वी सिंह एवं एच एस यादव
सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, मेरठ-250 110 (उ.प्र.)

**सांराश :** उत्तर भारत के मैदानी भागों में गेहूँ की उपज पर मेंथा स्लरी का प्रभाव ज्ञात करने के लिए सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, मेरठ के रामपुर स्थित कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा अंगीकृत गाँव में किसान के खेत में वर्ष 2002-03 एवं 2003-04 की रबी ऋतु में एक प्रयोग किया गया। इस प्रयोग में तीन फर्टिलिटी स्तरों 90: 60: 40, 120: 60: 40, 150: 60: 40 (N:P: K) को अकेले व 8t/ha मेंथा स्लरी के साथ रेन्डोमाइज्ड ब्लॉक डिज़ाइन में लगाया गया। इस प्रयोग के परिणामों से ज्ञात हुआ कि उपचार 150:60:40kg/ha नत्रजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश के साथ 8 t/ha मेंथा स्लरी का उपयोग करने पर वर्ष 2002-03 एवं 2003-04 में सार्थक रूप से गेहूँ की सबसे अधिक उपज क्रमशः 51.65 एवं 61.25q/ha मिली, जोकि 120:60:40kg/ha नत्रजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश + 8t/ha मेंथा स्लरी व अकेले 150:60:40kg नत्रजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश के उपचार से प्राप्त उपज के सांख्यिकीय आधार पर समतुल्य थी। उपचार 120:60:40kg/ha नत्रजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश के साथ 8t/ha मेंथा स्लरी देने पर सांख्यिकीय आधार पर 150:60:40kg/ha नत्रजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश/ha अकेले देने पर उपज में सार्थक अन्तर नहीं मिला। औसत आधार पर नत्रजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश के साथ 8.0t/ha मेंथा स्लरी देने पर उपचार नत्रजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश अकेले देने की तुलना में गेहूँ की उपज में 14-27% की वृद्धि हुई।

# Effect of mentha slurry on growth and yield of wheat (*Triticum aestivum* L.) in north Indian plains

R B Yadav, H R Singh, R V Singh & H S Yadav
S V B Patel University of Agriculture & Technology, Meerut 250 110 (U.P.)

**Abstract**

A Field experiment was conducted at farmer's field in the adopted village of KVK Rampur in north Indian plains during the rabi seasons of 2002-03 and 2003-04 to study the effect of incorporation of mentha slurry on the growth and yield of wheat (*Triticum aestivm* L.). Study revealed that the maximum grain yield of 59.65 and 61.25 q/ha was obtained with the treatment 150:60:40 kg/ha NPK along with 8.0 t/ha slurry during 2002-03 and 2003-04, respectively, which was statistically at par with 120:60:40 kg/ha, NPK + mentha slurry @ 8.0 t/ha, whereas the grain yield was statistically at par with the treatment where 120:60:40 kg NPK/ha was applied with 8.0t/ha mentha slurry to the treatment 150:60:40 kg NPK/ha alone. On an average about 14-27% more grain yield was obtained with the use of mentha slurry @ 8.0t/ha to their respective treatments.

भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान पत्रिका
वर्ष 15 अंक 1 जून 2007 पृ. 74-79

# झारखण्ड के राँची जिले के आदिवासियों द्वारा प्रयुक्त देशज चिकित्सा शैली

रेखा सिन्हा, वलेरिया लकड़ा, बिन्दु शर्मा, अजय कुमार द्विवेदी एवं बसन्त कुमार झा
प्रसार शिक्षा निदेशालय, बिरसा कृषि विश्वविद्यालये, काँके, राँची 6 (झारखण्ड)

**सारांश :** झारखण्ड एक आदिवासी बाहुल्य प्रदेश है जहाँ की आबादी कुल आबादी की लगभग 28% है। इन जनजातियों को समीपवर्त्ती वनों एवं अपने आस-पास पाये जाने वाले पौधों के औषधीय गुणों के बारे में पर्याप्त जानकारी है लेकिन जो धीरे-धीरे आधुनिकीकरण की चमक में लुप्त होती जा रही है। इस स्थानीय ज्ञान को संरक्षित करके उसके अनुसंधान एवं प्रसार की आवश्यकता महसूस की जा रही है। इन बातों को ध्यान में रखकर राँची जिले के आदिवासियों की देशज स्वास्थ्य चिकित्सा पर प्रलेख तैयार करने के उद्देश्य से एक विस्तृत सर्वेक्षण किया गया और प्राप्त आंकड़ों को एकत्र करके इस शोध-पत्र में प्रस्तुत किया गया है।

# Indigenous health practices of tribals in Ranchi District of Jharkhand

R Sinha, V Lakra, B Sharma, A K Dwivedi & B K Jha
Directorate of Extension Education
Birsa Agricultural University, Kanke, Ranchi 6 (Jharkhand)

**Abstract**

An ethnobotanical survey was carried out among the ethnic groups in Ranchi district of Jharkhand. Traditional use of 41 plant species are documented in this study. These tribals are using 16 plant species to cure gastro-intestinal disorders, 7 each for headache as well as respiratory problems and 11 for the treatment of other health problems prevalent in the study area. India has a variety of tribal population reflecting its great ethnic diversity. Jharkhand is a homeland of 30 tribes including eight primitive tribes which constitute 28% of the total population. Majority of tribal population of Jharkhand lives in the forest ecosystem and has its own socio-cultural pattern and tradition. Tribal communities living in biodiversity rich areas possess a

wealth of knowledge on the utilization and conservation of medicinal plants. They have developed this traditional knowledge over several years of observations, trial and error, inference and inheritance. Some of the indigenous technologies are really effective, much cheaper than modern medicines, prepared by locally available natural resources and easy to prepare. The potentiality of indigenous health technologies is increasingly being recognized. In present days, this useful knowledge of indigenous people is fast disappearing due to modernization and the tendency among younger generation to discard their traditional life style. There is an urgent need to study and document this precious knowledge for the posterity of human society. Keeping this in view, an ethnobotanical survey was carried out to explore the information regarding the medicinal use of indigenous plants by tribals found in adjoining forest and agricultural fields.

भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान पत्रिका
वर्ष 15 अंक 1 जून 2007 पृ. 80-87

# अन्तः माइकोराइजा के सहजीवी उपनिवेशन एवं बीजाणु संख्या गतिकी पर मृदा-प्रदूषण का प्रभाव

नीरज एवं कमलेश यादव
वनस्पति विज्ञान विभाग
फिरोज़ गाँधी कालेज, रायबरेली 229 001 (उ.प्र.)

**सारांश :** प्रदूषित तथा प्रदूषण रहित मृदा में पुटिकामय कूर्चक कवक मूल (vesicular-arbuscular mycorrhiza or VAM) के सहजीवी उपनिवेशन (colonization) तथा बीजाणुओं की संख्या गतिकी का अध्ययन किया गया। प्रदूषित क्षेत्रों की जड़ों में सहउपनिवेशन, वेसीकल्स एवं आर्बस्क्यूल्स तथा मृदा में बीजाणु संख्या प्रदूषण रहित क्षेत्रों से अपेक्षाकृत कम मिले। विद्युत तापगृह के समीप प्रदूषित क्षेत्रों के पौधों की जड़ों में अधिकतम सहउपनिवेशन 35-60% तथा अधिकतम बीजाणु संख्या 75-95 बीजाणु/100g ग्राम मृदा पायी गयी। प्रदूषित क्षेत्र की जड़ों में आर्बस्क्यूल्स लगभग अनुपस्थित तथा वेसीकल्स बहुत कम मात्रा में थी। प्रदूषण रहित मृदा में इन्हीं पौधों की सहउपनिवेशन प्रतिशत (50-80%) तथा बीजाणु संख्या (121-168 बीजाणु/100g मृदा) अपेक्षाकृत अधिक पायी गयी। पेपर मिल तथा चीनी मिल द्वारा प्रदूषित सई नदी के पास के क्षेत्रों में अधिकतम सहउपनिवेशन प्रतिशत 20-25% तथा बीजाणु संख्या 52-60 बीजाणु/100g मृदा पायी गयी जो प्रदूषण रहित क्षेत्रों में क्रमशः 58-71% तथा 120-145 बीजाणु/100g मृदा मिली। चीनी मिल के पास के क्षेत्रों में पौधों की जड़ों में सहउपनिवेशन 30-50% तथा संबंधित राइजोस्फीयर मृदा में बीजाणु संख्या 70-85/100g मृदा पायी गयी जो कि प्रदूषण रहित क्षेत्रों में क्रमशः 71-78% तथा 158-182 बीजाणु/100g मृदा थी। कवक मूल बीजाणु संख्या ग्रीष्मकालीन (मई-जून) एवं वर्षाकालीन (अगस्त) मृदा नमूनों की तुलना में अक्तूबर एवं फरवरी माह के मृदा नमूनों में अधिक थी। *एकाउलोस्पोरा* प्रजाति और *ग्लोमस* प्रजाति दोनों ही क्षेत्रों में अपेक्षाकृत अधिक पाये गये जबकि *एन्ट्रोफोस्पोरा* प्रजाति व *स्क्यूटलोस्पोरा* प्रजाति की बीजाणु संख्या प्रति 100g मृदा न्यूनतम पायी गई। प्रदूषण रहित क्षेत्रों की अपेक्षा प्रदूषित क्षेत्रों में आर्बस्क्यूल्स तथा वेसिकल्स की तुलनात्मक संख्या बहुत कम या अनुपस्थित पायी गयी।

# Effect of soil-pollution on symbiotic colonization and spore population dynamics of endo-mycorrhiza

Neeraj & Kamlesh Yadav
Botany Department
Feroz Gandhi College, Rae Bareli – 229 001

**Abstract**

Root colonization by vesicular-arbuscular mycorrhizal fungi and its spore population dynamics in pollution-free and polluted soil was studied. AM fungal colonization, formation of arbuscules and vesicles and respective spore counts were comparatively

lower in polluted soil. Maximum colonisation in polluted area near thermal power plant was up to 35-60% and highest spore count was up to 75-95 spores per 100 gm air-dried soil which were 50-80% and 121-168 spores/ 100 gm soil in pollution-free sites. Polluted areas near paper mill or sugar mill had VAM colonization up to 20-25% only and spore count was 52-60 spores/ 100 g soil where as in non-polluted sites these were 58-71% and 120-145 spores/100 gm soil. AM spore counts were comparatively higher in soil samples collected in October and February months as compared to those found in summer and rainy seasons. Species of *Acaulospora* and *Glomus* were dominating the AM fungal spore populations where as *Entrophospora* sp. and *Scutellospora* sp. spore population were the lowest.

भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान पत्रिका
वर्ष 15 अंक 1 जून 2007 पृ. 88-91

# स्वच्छ पर्यावरण एवं ऊर्जा उत्पादन की दिशा में नगरीय ठोस अपशिष्टों का सूक्ष्मजैविक उपचार

निमिशा त्रिपाठी, राजशेखर सिंह, शैलेन्द्र कुमार सिंह एवं आशा गुप्ता
केन्द्रीय खनन अनुसंधान संस्थान, बरवा रोड धनबाद - 826 001 (झारखंड)

**सारांश :** भारत में नगरीय अपशिष्ट पदार्थों की मात्रा दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है, परन्तु इनके भंडारण हेतु प्रयुक्त खाली स्थानों की उपलब्धता घटती जा रही है। यही नहीं, सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इन नगरीय अपशिष्टों में विभिन्न प्रकार के कार्बनिक पदार्थ बहुतायत में उपस्थित रहते हैं, जो वर्षा के जल से निक्षालित होकर स्तरीय जल को बुरी तरह प्रभावित करते हैं, जिसके फलस्वरूप मानव जाति, जन्तुओं तथा पेड़-पौधों को विभिन्न प्रकार की भयंकर एवं जानलेवा बीमारियों का कोपभाजन बनना पड़ सकता है। इन अपशिष्टों से उत्पन्न होने वाली गैसें, यथा मीथेन एवं नाइट्रोजन डाइऑक्साइड आदि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से ग्लोबल वॉर्मिंग, जो आज विश्व की प्रज्वलंत समस्या है, के लिए भी जिम्मेदार हैं। ऊपर वर्णित सभी समस्याओं के मद्देनज़र पर्यावरणीय तथा स्वास्थ्य की सुरक्षा के दृष्टिकोण से नगरीय अपशिष्टों की तरफ विश्व-व्यापी स्तर पर वैज्ञानिकों एवं पर्यावरणविदों का ध्यान आकर्षित हो रहा है। इन नगरीय अपशिष्टों का पर्या-हितैषी ढंग से लाभकारी उपयोग करने के साथ ही इनमें उपस्थित विभिन्न धातुओं तथा आर्थिक महत्व के पदार्थों की पुनः प्राप्ति एवं इनसे प्राप्त ऊर्जा, वास्तव में स्वच्छ ऊर्जा, उत्पादन के क्षेत्र में प्रयास इनके भंडारण की समस्या को दूर करने में ही नहीं, बल्कि देश की अर्थ-व्यवस्था में सुधार की दृष्टि से भी अवश्यंभावी है, एवं सूक्ष्मजैविक तकनीक इस स्वच्छ अपशिष्ट तकनीक में एक अग्रदूत के रूप में सामने आयी है। ठोस कार्बनिक अपशिष्टों, विशेषकर घरेलू अपशिष्टों का अनॉक्सी अवघटन (डाइजेशन) ठोस अपशिष्टों की अनवरत रूप से बढ़ती मात्रा के उपयोगी प्रयोग में अति महत्वपूर्ण साबित हुआ है। इस प्रक्रम के अन्तर्गत ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में कार्बनिक पदार्थों का विघटन किया जाता है, जिसमें मुख्य उत्पाद के रूप में बायोगैस (जो 65% मीथेन तथा 35% कार्बन डाइऑक्साइड का मिश्रण होता है) तथा साथ ही कुछ मात्रा में जीवाणुवीय जैविक भार भी प्राप्त होता है। इस प्रकार, इस तकनीक द्वारा एक अच्छी मात्रा में गैसीय ईंधन प्राप्त किया जा सकता है। इसमें सूक्ष्मजीवों का प्रयोग दो प्रकार से लाभकारी है। पहला यह कि यह अपशिष्ट पदार्थों को कम प्रदूषणकारी बनाने में मदद करता है, तथा दूसरा यह कि इससे जैविक ऊर्जा, जो विद्युत उत्पादन, वाहन चालन तथा ऊष्मा के रूप में प्रयोग की जा सकती है, की प्राप्ति होती है। प्रस्तुत शोध पत्र में सूक्ष्मजीवों के प्रयोग द्वारा ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में नगरीय ठोस अपशिष्ट पदार्थों से जैविक ऊर्जा उत्पादित करने की दिशा में प्रयोग किए गये हैं, जिनके द्वारा गैस (मीथेन) एवं द्रव (मीथेनॉल) के रूप में ईंधन प्राप्त किया गया है।

# Microbial treatment of municipal solid wastes for clean environment and bio-energy production

Nimisha Tripathi, Rajsekhar Singh, Shelendra Kumar Singh &
Asha Gupta

Central Mining Research Institute, Barva Road, Dhanbad - 826 001 (Jharkhand)

**Abstract**

In India, the area available for the storage of day-by-day increasing amount of municipal solid wastes is depleting. The most important fact is that several types of organic matters, abundantly found in these municipal wastes leach down to ground water and badly affect the human kind, animals and plants by causing several dreaded diseases. The gases, such as methane, nitrogen dioxide, etc., generating from the municipal solid wastes are also directly or indirectly responsible for the global warming. All the above-mentioned problems have attracted the attention of scientists and environmentalists on a global scale to achieve the environmental and health security. The gainful and environment friendly utilization of municipal solid wastes and obtaining the economical products and production of cleaner energy therefrom not only ensures the economic development of the country, but also proves to be a harbinger of the microbial technique for the municipal solid waste treatment. Anaerobic digestion of solid organic wastes, especially municipal solid wastes is proved to be very important for the gainful utilization of municipal solid wastes. In the process of anaerobic digestion, organic matters are digested in the absence of oxygen, in which biogas (which is a mixture of 65% methane and 35% carbon dioxide), besides a little amount of microbial biomass is obtained. Therefore, a good amount of gaseous fuel can be obtained by the microbial technique, which is beneficial from two points of view. Firstly, it makes the municipal solid wastes lesser polluted and secondly bio-energy is produced, which can be used for vehicles and also as heat. The present paper focuses on the anaerobic digestion of municipal solid wastes for the production of bio-energy, such as methane and methanol which can be used as a fuel.

भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान पत्रिका
वर्ष 15 अंक 1 जून 2007 पृ. 92-97

# वनौषधि प्रबंधन में जैवप्रौद्योगिकी का योगदान

प्रशांत कुमार मिश्र, शशि भूषण चौधरी एवं प्रेम शंकर मणि त्रिपाठी
वनस्पति विज्ञान विभाग, विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारी बाग (झारखंड)

**सारांश :** विभिन्न रोगों के इलाज में वनौषधि का उपयोग प्राचीन काल से ही सर्वमान्य रहा है। एन्टीबायोटिक तथा स्टीरॉयड जैसे यौगिकों की खोज से लग रहा था कि चिकित्सा जगत में एक क्रान्ति आ गई है। परंतु कालान्तर में ज्यों-ज्यों इन यौगिकों से होने वाले दीर्घकालीन पार्श्विक दुष्प्रभाव का बोध लोगों को होने लगा त्यों-त्यों देश-विदेश में लोगों को वनस्पति आधारित चिकित्सा पर विश्वास बढ़ने लगा है। स्पष्ट है कि इस बदलते परिप्रेक्ष्य में वनौषधियों को बनाने के लिए विभिन्न औषधीय गुण वाले पादपों का संरक्षण एवं प्रबंधन अनिवार्य हो गया है। इस दिशा में जैवप्रौद्योगिकी का उपयोग सफलतापूर्वक किया जा सकता है। चिकित्सकीय रूप से ऐसे कई महत्वपूर्ण पौधे हैं (जैसे- सर्पगंधा, ब्राह्मी, चिरैता, सफेद मुसली इत्यादि) जिनकी संख्या लगातार कम होती जा रही है तथा मांग बढ़ती जा रही है। ऊतक संवर्धन (टिश्यू कल्चर) तकनीक का उपयोग करके इन पौधों को पर्याप्त संख्या में पैदा किया जा सकता है। टैक्सस एक बहुत ही धीमी गति से बढ़ने वाला वृक्ष है तथा इससे प्राप्त यौगिक टैक्सोल का उपयोग कैंसर के इलाज में किया जाता है। कोशिका संवर्धन की तकनीक को अपनाकर इस यौगिक का उत्पादन प्रयोगशाला में किया जा सकता है। वनौषधियों के उपयोग में एक बड़ी समस्या मानकीकरण की होती है। जैवप्रौद्योगिकी से पौधे में पाए जाने वाले सक्रिय तत्वों का अध्ययन करके इस दिशा में सफलता पाई जा सकती है। भूमण्डलीकरण के युग में बौद्धिक सम्पदा अधिकार एक प्रमुख विषय बन चुका है। हल्दी एवं नीम पर विदेशियों द्वारा पेटेंट अधिकार प्राप्त करने का प्रयास किया जा चुका है। ऐसी अवस्था में अपने देश में प्राप्त वनौषधियों एवं पारम्परिक ज्ञान का संरक्षण अति आवश्यक हो गया है। इसके लिए अपने देश में प्रचलित दवाओं का वैज्ञानिक अध्ययन एवं उनका अभिलेख तैयार करना अनिवार्य है। इस दिशा में भी जैवप्रौद्योगिकी का उपयोग सफलतापूर्वक किया जा सकता है। झारखंड में इसकी प्रचुर सम्भावनायें हैं।

# Role of biotechnology in medicinal plant management

Prashant Kumar Mishra, Shashi Bhushan Choudhary & Prem Shankar Mani Tripathy
Department of Botany, Vinoba Bhave University, Hazaribagh, Jharkhand

**Abstract**

Utility of medicinal plants in the treatment of various diseases has been accepted from ancient time. Discovery of antibiotics and steroids seemed to revolutionize the medicinal world. But, as long term side effect of these compounds was experienced, people once again started reverting to medicinal plants. The importance of conservation and management of medicinal plants is clear. Biotechnology can be used in this direction successfully. Population of a large number of medicinal plants is reducing and their demand is increasing. These plants can be propagated in sufficient number with the help of tissue culture. *Taxus* is a slow growing plant and the compound taxol obtained from it is highly useful in treatment of cancer. This compound can be obtained in the laboratory by cell culture methods. Standardisation of medicinal plants is a big problem. This can be solved by studying active molecules of plant with the help of biotechnology. In the era of globalisation, intellectual property has become a burning subject. Other countries have already tried to obtain patent on turmeric and neem. In such conditions conservation of plants and traditional knowledge is essential. It is urgent to prepare complete data base of traditional medicines and their preparations. Biotechnology can be applied successfully in this direction.

भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान पत्रिका
वर्ष 15 अंक 1 जून 2007 पृ. 98-108

# जैविक नियंत्रण : पादप सूत्रकृमि के परिप्रेक्ष्य में

राकेश पाण्डेय
केन्द्रीय औषधीय एवं सगंध पौधा संस्थान, पो. आ. सीमैप लखनऊ-226 015 (उ.प्र.)

**सारांश :** वातावरण को स्वच्छ रखने के लिए गैर-रासायनिक विधियों को अपनाकर पादप सूत्रकृमियों का नियंत्रण किया जा सकता है एवं फसलों की उपज में वृद्धि लायी जा सकती है। जैविक नियंत्रण सर्वोत्तम विधि है जिसके अंतर्गत वातावरण को पूर्णतया स्वच्छ रखते हुए पादप सूत्रकृमियों का नियंत्रण किया जाता है। इस विधि में कवक, जीवाणु एवं कुछ सूत्रकृमियों का सघन प्रयोग करते हैं। जैविक नियंत्रण का प्रयोग अन्य विधियों के साथ मिलाकर एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन में करके रोगों का नियंत्रण किया जाता है।

# Biological control of plant parasitic nematodes

Rakesh Pandey
Central Institute of Medicinal and Aromatic Plants, P.O. CIMAP, Lucknow –226 015

**Abstract**

Plant parasitic nematodes are major pests of large number of agricultural crops, including medicinal and aromatic plants, causing heavy yield losses and considerably reducing farm incomes of the growers. It is therefore important to recognize the nematode infestation problems at an early stage and initiate appropriate eco-friendly control measures. The decreasing scope of major weapon of nematode control, i.e. chemical nematicides because of non-availability of potent chemical nematicides and increased awareness of consumers about ill effects of chemicals, biological nematode management tactics are becoming increasingly popular. The biological control of plant parasitic nematodes is considered as one of the safest, eco-friendly and effective management tactic to keep nematode population under control. In this method different types of organic and biological inputs like various manures/compost, botanicals and microbes like fungi, bacteria, nematodes etc. are presently used at commercial scale to keep the plant parasitic nematode population below the damaging level for enhancing the crop yield.